श्री राम-कौसल्या संवाद

*** अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥ मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥4॥

भावार्थ:

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यंत विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी श्री रामचंद्रजी माता कौसल्या के पास गए। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। (श्री रामजी को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब भाइयों को छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।)॥4॥

दोहा :

*** नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥51॥

भावार्थ:

श्री रामचंद्रजी का मन नए पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधनेकी काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बंधन से छूटा जानकर, उनके हृदय में आनंद बढ़ गया है॥51॥

चौपाई :

*** रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥ दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥1॥

भावार्थ:

रघुकुल तिलक श्री रामचंद्रजी ने दोनों हाथ जोड़कर आनंद के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े निछावर किए॥1॥

*** बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥ गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥2॥

भावार्थ:

माता बार-बार श्री रामचंद्रजी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है और सब अंग पुलकित हो गए हैं। श्री राम को अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुंदर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे॥2॥

*** प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई॥ सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली

मधुर बचन महतारी॥3॥
भावार्थ:
उनका प्रेम और महान् आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुंदर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं॥3॥
*** कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥ सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥4॥
भावार्थ:
हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनंद- मंगलकारी लग्न कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुंदर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधिहै,॥4॥
दोहा :
*** जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति। जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥52॥
भावार्थ:
तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद् ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं॥52॥
चौपाई :
*** तात जाउँ बलि बेगि नाहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥ पितु समीप तब जाएहु भैआ। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥1॥
भावार्थ:
हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है॥1॥
*** मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥ सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥2॥
भावार्थ:
माता के अत्यंत अनुकूल वचन सुनकर जो मानो स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुख रूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे- ऐसे वचन रूपी फूलों को देकर श्री रामचंद्रजी का मन रूपी भौंरा उन पर नहीं भूला॥2॥
*** धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥ पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥3॥
भावार्थ:
धर्मधुरीण श्री रामचंद्रजी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यंत कोमल वाणी से कहा- हे माता! पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला

है॥3॥

*** आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥ जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें॥4॥

भावार्थ:

हे माता! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वन यात्रा में आनंद-मंगल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता! तेरी कृपा से आनंद ही होगा॥4॥

दोहा :

*** बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान। आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥53॥

भावार्थ:

चौदह वर्ष वन में रहकर, पिताजी के वचन को प्रमाणित (सत्य) कर, फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा, तू मन को म्लान (दुःखी) न कर॥53॥

चौपाई :

*** बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥ सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥1॥

भावार्थ:

रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गईं जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है॥1॥

*** कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥ नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥2॥

भावार्थ:

हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो!॥2॥

*** धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति म्हतारी॥ तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥3॥

भावार्थ:

धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गदगद वचन कहने लगीं- हे तात! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे॥3॥

*** राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहिं अपराधा॥ तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥4॥

भावार्थ:

राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ! सूर्यवंश (रूपी वन) को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया?॥4॥

दोहा :

*** निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ। सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥54॥

भावार्थ:

तब श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी जैसी (चुप) रह गईं, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥54॥

चौपाई :

*** राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥ लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥1॥

भावार्थ:

न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। (मन में सोचती हैं कि देखो-) विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिखा गया राहु॥1॥

*** धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥ राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥2॥

भावार्थ:

धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्याजी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छछूँदर की सी हो गई। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है,॥2॥

*** कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥ बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥3॥

भावार्थ:

और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्मसंकट मेंपड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गईं। फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर-॥3॥

*** सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥ तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥4॥

भावार्थ:

सरल स्वभाव वाली श्री रामचन्द्रजी की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं- हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है॥4॥

दोहा :

*** राजु देन कहिदीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु। तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥55॥

भावार्थ:

राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। (दुःख तो इस बात का है कि) तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा॥55॥

चौपाई :

*** जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥ जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥1॥

भावार्थ:

हे तात! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा, हो तो माता को (पिता से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ, किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है॥1॥

*** पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥ अंतहुँ उचितनृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥2॥

भावार्थ:

वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है॥2॥

*** बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥ जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू॥3॥

भावार्थ:

हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागा है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय मेंसंदेह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)॥3॥

*** पूत परम प्रिय तुम्हसबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥ ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ॥4॥

भावार्थ:

हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम

कहते हो कि माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ॥4॥

दोहा :

*** यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढ़ाइ। मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥56॥

भावार्थ:

यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती! बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना॥56॥

चौपाई :

*** देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥ अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना॥1॥

भावार्थ:

हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो॥1॥

*** अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥ जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥2॥

भावार्थ:

ऐसा विचारकर वही उपाय करना, जिसमें सबके जीते जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुखपूर्वक वन को जाओ॥2॥

*** सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥ बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥3॥

भावार्थ:

आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। (इस प्रकार) बहुत विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर माता श्री रामचन्द्रजी के चरणों में लिपट गईं॥3॥

*** दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥ राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥4॥

भावार्थ:

हृदय में भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्रजी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया॥4॥

दोहा :

*** समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ। जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥57॥

भावार्थ:

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरणकमलों की वंदना कर सिर नीचा करके बैठ गईं॥57॥

चौपाई :

*** दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥ बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥1॥

भावार्थ:

सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीताजी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नीचा मुख किए बैठी सोच रही हैं॥1॥

*** चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥ की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥2॥

भावार्थ:

जीवननाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा- शरीर और प्राण दोनों साथ जाएँगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती॥2॥

*** चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥ मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥3॥

भावार्थ:

सीताजी अपने सुंदर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीताजी के चरण कभी हमारा त्याग न करें॥3॥

*** मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥ तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥4॥

भावार्थ:

सीताजी सुंदर नेत्रों से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी बोलीं- हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं॥4॥

दोहा :

*** पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु। पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप

निधानु॥58॥

भावार्थ:

इनके पिता जनकजी राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पतिसूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भंडारहैं॥58॥

*** मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥ नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥1॥

भावार्थ:

फिर मैंने रूप की राशि, सुंदर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंनेइन (जानकी) को आँखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं॥1॥

*** कलपबेलि जिमि बहु बिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥ फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥2॥

भावार्थ:

इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़चाव के साथ स्नेह रूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गए। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा॥2॥

*** पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥ जिअनमूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥3॥

भावार्थ:

सीता ने पर्यंकपृष्ठ (पलंग के ऊपर), गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से) इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती॥3॥

*** सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥ चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुखनयन सकइ किमि जोरी॥4॥

भावार्थ:

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है॥4॥

दोहा :

*** करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि। बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥59॥

भावार्थ:

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की

वाटिका में सुंदर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है?॥59॥

चौपाई :

*** बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥ पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥1॥

भावार्थ:

वन के लिए तो ब्रह्माजी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता॥1॥

*** कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥ सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥2॥

भावार्थ:

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिए हैं। हे पुत्र! जो तसवीर के बंदर को देखकर डर जाती हैं, वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी?॥2॥

*** सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥ अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥3॥

भावार्थ:

देवसरोवर के कमल वन में विचरण करने वाली हंसिनी क्या गड़ैयों (तलैयों) में रहने के योग्य है? ऐसा विचार कर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ॥3॥

*** जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥ सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी सील सनेह सुधाँ जनु सानी॥4॥

भावार्थ:

माता कहती हैं- यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाए। श्रीरामचन्द्रजी ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेह रूपी अमृत से सनी हुई थी,॥4॥

दोहा :

*** कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष। लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥60॥

भावार्थ:

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को संतुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजी को समझाने लगे॥60॥

मासपारायण, चौदहवाँ विश्राम